निर्वचन और निरुक्त शब्दों का इतिहास

आचार्य शिवनारायण शास्त्री

जैसा कि आपाततः स्पष्ट प्रतीत होता है निर्वचन और निरुक्त शब्द निर् + वच् से व्युत्पन्न हैं। निर्वचन के अर्थ पर श्रीमद् दुर्गसिंह का कहना है कि परोक्षवृत्ति या अतिपरोक्षवृत्ति शब्द में छुपे हुए अर्थ को निकाल करके, अर्थात् शब्द के सब अवयवों को अलग-अलग करके, कहना निर्वचन कहलाता है।[1] यह तो है यौगिक अर्थ।

निर्वचन और निरुक्त शब्द योगरूढ हैं। अर्थात् इनसे केवल छुपे हुए अर्थ को निकालकर कहने का ही भाव नहीं प्रकट होता, अपितु इस प्रकार कहने वाला शास्त्र अर्थ प्रकट होता है। ये दोनों शब्द कब से इस विशिष्ट अर्थ में रूढ हुए ? इस प्रश्न का उत्तर पाने को जब हम अतीत में झाँकते हैं, तो हमें अपने प्रश्न का उत्तर वैदिक संहिताओं में नहीं मिलता। अथर्ववेद संहिता में अनेक बार निर् + वच् के तिङन्त रूपों का प्रयोग हुआ है। किन्तु वहां इस योग का अर्थ कुछ और ही है :

यक्ष्मणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥ ९/८/१०

शौनकशाखा के इस मन्त्र के निरवोचम् की व्याख्या पैप्पलादशाखा के निम्न मन्त्र में निर्मन्त्र धातु से की गई है। **यक्ष्माधामन्तरात्मनो बहिर्निमंन्त्रयामहे॥ १६।७५।२**

इसीलिए सायण ने मन्त्र से विष को निकाल बाहर करता हूं कहा है [2]। याजुष काठक और मैत्रायणी सहिताओं में निरुक्त शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु उसका अर्थ यौगिक ही है। अर्थात् वहा निरुक्त पद स्पष्ट रूप से कहा हुआ अर्थ में देवता या साम आदि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[3]

---

1 द्र. २/१ : अपिहितस्य अर्थस्य परोक्षवृत्तौ अतिपरोक्षवृत्तौ वा शब्दे निष्कृष्य विगृह्य वचनं निर्वचनम्।

2 द्र. अथर्व. सं. (शौनकीया) भाष्य ४।६।४ : मन्त्रेण निर्वार्यं करोमि।..... यद्वा तदीयं विषं निर्गतं ब्रवीमि इत्यर्थः।

3 द्र. काठक सं. ६/५ तं गर्भिण्या वाचा मिथुनया प्रजनयति यन्निरुक्तं चानिरुक्तं च तन्मिथुनम्। ९/१६ एतद्वै देवानां ब्रह्मा निरुक्त यच्चतुर्होतारस्तवेन निरुच्यमानं प्रकाश गमयति। ३२।१ : तेनाग्नीषोमयोरयाट् प्रिया धामानीत्युपांश्वनि- रुक्तं तेनावरुन्धेऽग्नीषोमयोरयाट् प्रिया धामानीत्युच्चैनिरुक्तं तेनानिरुक्तं च वा इदं निरुक्तं च। तस्यैवोभयस्यावरुद्ध या प्रयो.... | मंत्रा० स० १।११ : प्रनिरुक्त: प्रात- स्सवः प्रजापतिमेव तेनाप्नोति वियोनिवँ वाजपेयः प्राजापत्यः, स निरुक्तसामा, यदनिरुक्तः प्रातस्सवस्तेन सयोनि रथन्तरं साम भवति। ३८६ षजुषा हविर्धानं मिनोति, निरुक्ता हि द्यौः, यजुषा सदो निरुक्ता हीयम्, अयजुषाग्नीघ्रम्, अनिरुक्त- मिव ह्यन्तरिक्षम् श्रर्थमाग्नीप्रस्यान्तर्वेदि मिनोति, श्रयं बहिर्वेदि, अर्धं ह्यन्तरिक्षस्या- स्मिलोकेऽर्धममुष्मिन्। ३।८।१०: तदेषां मिथुनं प्रजायं निरुक्ता धन्येऽनिरुक्ता श्रन्ये, ये निरक्तास्तेऽस्मं लोकाय, येऽनिरुक्तास्तेऽमुष्मं अयाय।

शाङ्खायन आदि प्राचीन ब्राह्मणों में भी निरुक्त शब्द इसी अर्थ में आया है [4]। शतपथ ब्राह्मरण तक में निरुक्त शब्द का पारिभाषिक शब्द व्याख्यापरक) अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है। इस अर्थ में अथवा अन्य किसी अर्थ में भी, निर्वचन शब्द तो अभी प्रज्ञात ही है।

सामवेद के देवताध्याय- ब्राह्मण में सबसे प्रथम निर्वचन शब्द पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उसके तीसरे खण्ड में **अथातो निर्वचनम्** कह कर गायत्री आदि छन्दों का निर्वचन किया गया है। इस ब्राह्मण के इस प्रकरण की शब्दावली तथा विषयवस्तु निरुक्त (७/१२,१३) के छन्दों के निर्वचन से बिल्कुल मिलती-जुलती है :

निरुक्त

गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः। त्रिगमना वा विपरीता। गायतो मुखादुदपततदिति च ब्राह्मणम्। उष्णिगुत्स्नाता भवति। स्निह्यतेर्वा स्यात् कान्तिकर्मणः। उष्णी- षिणो वेत्योपमिकम्। उष्णीषं स्नायतेः। ककुप् ककुभिनो भवति। ककुत्च कुब्जश्च कुजते वब्जतेर्वा। अनुष्टुवनुष्टोमनात्। गायत्रीमेव त्रिपदां सतीं चतुर्थेन पादेना- तुष्टोमतीति च ब्राह्मणम्। बृहती परि- बर्हणात्। पङ्क्तिः पञ्चपदा। त्रिष्टुप् स्तोमत्युत्तरपदा का तु त्रिता स्यात्। तीतमं छन्दः। त्रिवृद् वज्रस्तस्य स्तो- मनोति वा। यत्त्रिरस्तोभत त्रिष्टुभस् त्रिष्टुत्वमिति विज्ञायते। ७।१२। जगती गततम छन्दः। जलचरगतिर्वा जल्गल्य- मानोऽसृजदिति च ब्राह्मणम्। विराड् विराजनाद्वा, विराधनाद्वा विप्राप- णाद्वा। विराजनात्सम्पूर्णाक्षरा, विराध नामाक्षरा, विप्रापणादधिकाक्षरा। पि- पीलिका पेलतेगंतिकर्मणः। ७।१३।

देवताध्याय ब्राह्मण

अथातो निर्वचनम् ३।१ । गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः ।२। गायतो मुखायु-दपततदिति ब्राह्मणम् ।३। उष्णिगुत्स्ना- नात्, स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपियो- हणीषिणी वेत्यपमिकम् |४| ककुप् कक्कु- द्र पिरीत्यपमिकम् ।५। ककुप्च कुजच कुजतेर्वोब्जतेर्वा |६| अनुष्टुवनुष्टोमना तू |७| धन्वस्तोदिति ब्राह्मणम् पिपीलिका पेलतेगंतिकर्मणः |8| पिपीलि- कमध्येत्यपमिकम् | १०| वृहती बृहते वृद्धिकर्मणः | ११ | विराड् विरमणाद् विराजनाद्वा | १२ | पङ्क्तिः पञ्चिनी पञ्चपदा | १३ | त्रिष्टुप्स्तोभ इत्युत्तरपदा | १४| का तु त्रिता

4 द्र. ८/३ : उच्चैर्निरुक्तमभिष्टुयात्प्राणा वं स्तुमो निरुवतो ह्येषः। ११/१ : उच्चैर्निरुक्तमनुब्रूयात्। एतद् ध वा एक वाचो नन्ववसितं पाप्मनो यन्निरुक्तम्, तस्मान्निरुक्तमनुब्रूयाद् यजमानस्यैव पाप्मनोऽपहत्यं। १६।५ : अथ यदुच्चैः सोम्यस्य यजति चन्द्रमा वं सोमोऽनिरुक्तो वं चन्द्रमास्तस्य न परस्तात्पर्यजेदित्याहुः।

स्यात् तीर्णतमं छन्दो भवति । १५ । त्रिवृद् वज्रस्तस्य स्तोममि- त्यपमिकम् | १६| जगतो गततमं छन्दो जज्जगतिर्भवति क्षिप्रगतिजज्मला (?) कुर्वन्नसृजतेति ह ब्राह्मणम् | १७|

हमारा विचार है कि यह ब्राह्मण वास्तविक ब्राह्मण श्रेणी का नहीं है तथा इसका समय भी निरुक्त के बाद का है। इसमें हेतु ये हैं :

१. हम देख चुके हैं कि प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं भी निर्वचन शब्द उपलब्ध तक नहीं होता, जब कि इसमें यह पारिभाषिक अर्थ में ही व्यवस्थित ढंग से प्रयुक्त हुआ है।

२. निरुक्त में न जाने किस ब्राह्मण से इति च ब्राह्मणम् कह कर उद्धृत निर्वचनों को इसमें उसी प्रकार इतिहब्राह्मणम् के नाम से उद्धृत किया है, जब कि एक ब्राह्मण में दूसरे ब्राह्मण को इस प्रकार उद्धृत करने की परिपाटी नहीं है।

३. त्रिष्टुप् की व्याख्या में निरुक्त में (इति विज्ञायते कह कर) उद्धृत ब्राह्मण वाक्य देवताध्याय में नहीं है।

४. इसमें पङ्क्ति की पञ्चिनी व्याख्या (१३) का मिलना तथा निरुक्त में न मिलमा निरुक्त की उपजीव्यता सूचित करता है।

मुण्डकोपनिषद् (१।५) में अपरा विद्या के प्रसङ्ग में छह वेदाङ्गों को गिनाते हुए निरुक्त का भी चौधे वेदाङ्ग के रूप में परिगणन किया गया है छान्दोग्योपनिषत् (७/१/२) में देवविद्या शब्द आया है जिसका स्वामी शङ्कराचार्य जी ने निरुक्तम् अर्थ किया है।

हमारे लिए यह उल्लेख बहुत महत्त्व का है। ब्राह्मणों में निरुक्त शब्द के अर्थ के प्रसङ्ग में हम देख चुके है कि उनमें निरुक्त शब्द का प्रयोग शब्दशास्त्र की निर्वचनशाखा या निरुक्तशास्त्र के अर्थ में नहीं हुआ है, अपितु देवताओं का स्वरूप निर्वचन अर्थ में हुआ है। जिस देवता या उससे सम्बद्ध वस्तु आदि का स्वरूप स्पष्ट व्याख्यात है, उसको ब्राह्मणों में निरुक्त कहा गया है। अतः ब्राह्मणों में देवविद्या के सन्दर्भ में निरुक्त शब्द का प्रयोग सर्वत्र हुआ है यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है।

यास्क के निरुक्त से भी यही निष्कर्ष निकलता है। उनके निरुक्त के दो कार्य है

(१) शब्दों का भाषाशास्त्रीय निर्वचन।

(२) वैदिक देवताओं का स्पष्टीकरण।

निरुक्त के चौदह मध्यायों में से केवल छह अध्यायों अर्थात् आधे से भी कम भाग में शब्दों का भाषाशास्त्रीय निर्वचन और शेष भाग में देवताओं का स्पष्टीकरण किया गया है। अर्थात् यास्क के निरुक्त में भी शब्दशास्त्रीय निर्वचनविद्या की अपेक्षा देवविद्या को अधिक महत्व दिया गया है।

ब्राह्मणों में निर्वचन बहुतायत से मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणग्रन्थ निरुक्तशास्त्र के इस रूप से भली भांति परिचित हैं। अन्तर यही है कि वहाँ इस अर्थ में निरुक्त शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। पर इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय निरुक्त शब्द का प्रयोग शब्दशास्त्रपरक अर्थ में नहीं होता था।

निष्कर्ष: इस विवरण के आधार पर हमारा विचार है कि निरुक्त-शास्त्र का आरम्भ भाषाशास्त्रीय अध्ययन के द्वारा वैदिक देवताओं का स्वरूप स्पष्ट करने वाली देवविद्या के रूप में हुआ होगा। अर्थात् भाषाशास्त्र और देवविद्या (Etymology और Theology), ये दोनों ही, निरुक्त-शास्त्र का विषय रहे होंगे।